अभिभावक, जो सोचते हैं...

✍ ऋषभ कुमार मिश्र

यह लेख एक शोध पर आधारित है जो दिल्ली महानगर के दो माध्यमिक विद्यालयों में पढ़ने वाले विद्यार्थियों के अभिभावकों को सहभागी बनाकर किया गया है। इन अभिभावकों से उनकी शैक्षिक पृष्ठभूमि, विद्यालयी अनुभव, शिक्षा प्रक्रिया में बच्चों की सहभागिता, विद्यालय से अंतःक्रिया और भागीदारी आदि विषयों से जुड़े सवालों के परिप्रेक्ष्य में रखकर खुली बातचीत की गई।

किसी भी विद्यालय के रोजमर्रा के एक दिन की कल्पना कीजिए। इस कल्पना के विभिन्न बिंबों में से एक बिंब अभिभावक का भी उभरेगा जो अपने बच्चे को पहुंचाने, लेने या उसकी शैक्षिक प्रगति के बारे में बात करने के लिए विद्यालय आया हुआ है। क्या हमने इस अभिभावक की दृष्टि से शैक्षिक सरोकारों को समझने की कोशिश की है? क्या हमने सोचा है कि शिक्षा के कथित उद्देश्यों जैसे–'सबके लिए शिक्षा', 'गुणवत्तापूर्ण शिक्षा' आदि में उसकी क्या भूमिका है? क्या उसकी भूमिका अपने पाल्य को केवल संसाधन मुहैया कराने या विद्यालय तक उसकी पहुंच सुनिश्चित करने या ट्यूशन आदि की पूरक सुविधा का प्रबंध भर कराने की है या वह इनसे आगे बढ़कर सीखने–सिखाने की प्रक्रिया का भी एक सक्रिय भागीदार है?

यह लेख इन्हीं प्रश्नों को उन अभिभावकों के नजरिए से समझने की एक कोशिश करता है जो सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से हाशिए के तबकों से आते हैं। लेख में यह भी समझने की कोशिश की गई है कि ये अभिभावक अपने बच्चों के लिए शिक्षा की भूमिका और उसकी प्रक्रिया में खुद की सहभागिता को कैसे देखते हैं? माना कि इस प्रकार के अभिभावक, अभिभावकों के बड़े समुच्चय का छोटा हिस्सा हैं फिर भी इनके नजरिए को जानना–समझना अपेक्षाकृत अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ये उस वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं जो अपनी पृष्ठभूमि के कारण मुख्यधारा से कटे हुए हैं और इस कटाव की निरंतरता के चलते हाशिए पर ही बने हुए हैं।

अभिभावकों की शैक्षिक पृष्ठभूमि

यहां दी गई तालिका में सहभागी अभिभावकों की सामाजिक–आर्थिक पृष्ठभूमि से जुड़ी जानकारी दी गई है। तालिका से स्पष्ट है कि एक पुरुष सहभागी को छोड़कर अन्य सभी सहभागियों की शिक्षा का उच्चतम स्तर कक्षा 10 तक का है। सभी महिला सहभागी तो साक्षरता के इस पैमाने पर और भी नीचे ठहरती हैं। शैक्षिक स्तर का यह आंकड़ा स्वाभाविक सवाल खड़ा करता है कि अभिभावक की कमजोर शैक्षिक पृष्ठभूमि का उनके बच्चों की शिक्षा के लिए क्या निहितार्थ है? यह सवाल भी है कि इन अभिभावकों का शिक्षा को लेकर जो संस्थागत अनुभव रहा है, वह किस प्रकार से उनके दृष्टिकोण को प्रभावित करता है? इन सवालों को ध्यान में रखते हुए अभिभावकों के शैक्षिक अनुभवों को जानने की कोशिश की गई है।

तालिका

विद्यार्थी का नाम	परिवार के कुल सदस्य (विद्यार्थी सहित)	पिता की शिक्षा और व्यावसायिक स्थिति	माता की शिक्षा और व्यावसायिक स्थिति
मो. खालिद	5 (माता–पिता, एक भाई, एक बहन)	8वीं पास, मंडी में काम करते हैं	गृहिणी केवल साक्षर
गौतम	4 (एक भाई, माता–पिता)	10वीं फेल, ट्रांसपोर्ट ड्राइवर	8वीं पास, ब्यूटीशियन
संतोष	5 (दो बहनें, माता–पिता)	10वीं पास, सुरक्षा गार्ड	केवल साक्षर, पति के नियोक्ता के घर में काम करती हैं।
नारायण	6 (एक भाई, दो बहनें, माता–पिता)	12वीं पास, सुरक्षा गार्ड	5वीं पास, मकान मालिक के घरेलू काम करती हैं।
साहिल	5 (दो बहनें, माता–पिता)	साक्षर, मीट की दुकान	गृहिणी, केवल साक्षर,
विकास	6 (दो भाई, दो बहनें, माता–पिता)	9वीं पास, प्राइवेट फर्म में काम	केवल साक्षर
फरहद	7 (तीन भाई, एक बहन, माता–पिता)	8वीं पास, बढ़ई	10वीं फेल
नकुल	3 (माता–पिता)	12वीं पास, दुकान पर काम करते हैं।	8वीं पास, माला बनाने का काम
शुभम	6 (तीन भाई, एक बहन, माता–पिता)	10वीं फेल, चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी	मकान मालिक के घरेलू काम करती हैं।
मो. इदरिस	5 (दो भाई, एक बहन, माता–पिता)	साक्षर, फोटोस्टेट मशीन चलाते हैं।	10वीं फेल, घर पर बुक बाइंडिंग का काम करती है।

उन्होंने अपने विचार इन शब्दों में व्यक्त किए :

'मेरे पिता चाहते थे कि मैं पढूं। मैं पढ़ने में अच्छा भी था। हाईस्कूल परीक्षा में फेल हो गया। गणित और इंग्लिश में फेल था। यदि ट्यूशन किया होता तो शायद पास हो जाता। उस समय भी हमारे टीचर पढ़ाने नहीं आते थे। अपने से पढ़कर जो बन सकता था वह किया।'

'आठवीं तक तो मैं स्कूल गई। फिर चाचा के साथ दिल्ली आ गई। यहां आने पर स्कूल (जाना) बंद हो गया। लेकिन जिस मुहल्ले में रहती थी वहां से जो सीखा वह स्कूल से कहीं ज्यादा था। मैं शहरातियों की तरह बातें करने लग गई।'

'हमारे समय में तो स्कूल का आतंक था। काम न करने पर मार पड़ती थी। काम न पूरा होने पर हम स्कूल ही नहीं जाते थे। घर के काम करके देरी कर देते थे।'

'10 वीं में तो 2–4 लोग ही पास होते थे। मेरे समय में तो पूरे गांव में एक भी लड़का पास नहीं हुआ था।'

इन सभी कथनों में अभिभावक के खुद के शैक्षिक अनुभव, पारिवारिक चुनौतियां, विद्यालय के नकारात्मक अनुभव और तत्कालीन संस्थागत ढांचे उजागर होते हैं। अभिभावकों के इन अनुभवों से ही शिक्षा संबंधी उनकी दृष्टि का विकास होता है। इस दृष्टि से वे अपने और बच्चों के अनुभवों की तुलना भी करते हैं। वे कहते हैं कि 'हमारे बच्चों की जिंदगी वैसी ही न हो जाए जैसी हमारी है, इसलिए सब सोच–समझकर स्कूल चुना है।' वे यह भी कहते हैं: 'मैं अपने परिवार को इसीलिए दिल्ली लाया कि कम से कम वे यहां पढ़–लिख लेंगे, नहीं तो घर (गांव) में तो वे इधर–उधर ही करते।' जब अभिभावकों को अपने बच्चों की शिक्षा के संबंध में निर्णय लेना होता है तो ये अनुभव भी उनके निर्णय पर प्रभावी असर डालते हैं। शिक्षा का उनका यह स्तर केवल शैक्षिक विकल्पों के चुनाव को ही नहीं प्रभावित करता बल्कि अभिभावक के रूप में उनकी भागीदारी को भी प्रभावित करता है। अभिभावक बताते हैं कि वे अपने बच्चों के स्कूल जाने से कतराते हैं क्योंकि वे डरते हैं कि 'बच्चों के शिक्षक से कैसे बात करेंगे?' इसी का एक अन्य रूप अभिभावकों के इस विश्वास में भी दिखता है कि 'हमें तो अंग्रेजी नहीं आती, हम कैसे उनकी बात समझेंगे?'

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट है कि अपनी कमजोर शैक्षिक पृष्ठभूमि को अभिभावक हीनता के तौर पर देखते हैं। हीनता का यह भाव शिक्षा प्रक्रिया के भागीदार के रूप में उनकी स्थिति को कमजोर करता है। इस भाव की मौजूदगी अभिभावकों की शैक्षिक मुद्दों को लेकर विद्यालय के भागीदारों, यहां तक कि बच्चों से भी

अंतःक्रिया को पदानुक्रमिक बना देती है, और अभिभावक खुद को इस सीढ़ी की निचली पायदान पर खड़ा मानते हैं। लेकिन फिर भी वे अपने बच्चों को इस सीढ़ी के ऊपरी पायदान पर भेजने का माध्यम शिक्षा को ही मानते हैं। अपनी सामाजिक–आर्थिक–सांस्कृतिक हीनता की क्षतिपूर्ति और उत्तरोत्तर विकास के लिए वे शिक्षा को माध्यम बनाना चाहते हैं।

शिक्षा, विद्यालय और शिक्षक

प्रायः शोध कार्यों में यह उभरा है कि सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से कमजोर वर्ग के अभिभावक शिक्षा को सामाजिक गतिशीलता, आर्थिक सफलता आदि का माध्यम मानते हैं। इस कार्य के सहभागी अभिभावक भी शिक्षा के उद्देश्यों को इसी प्रकार परिभाषित करते हैं। इसके अतिरिक्त अभिभावक यह भी मानते हैं कि शिक्षा बच्चों के 'आने वाले कल में बेहतर जिंदगी देगी'। बेहतर जिंदगी की व्याख्या करते हुए अभिभावक बताते हैं कि उनके बच्चों का समाज में सम्मान होगा, पहचान होगी, वे किसी के साथ भी बात कर सकने, उठ–बैठ सकने के काबिल होंगे। ज्यादातर शोध कार्यों में बड़े आदमी के रूपक द्वारा अभिभावकों की इच्छा को समझने की कोशिश की गई है लेकिन यहां सहभागी अभिभावकों की एक और भी राय दिखी। उनका मानना था कि उनके बच्चे पढ़ने के साथ कुछ 'हुनर', 'कारीगरी' सीख लें जो आगे उन्हें 'कमा सकने', 'घर चलाने', 'पैर पर खड़े होने' में मदद करे। हुनर को समय की जरूरत बताते हुए, वे मानते हैं कि एक तो वे खुद का रोजगार कर पाएंगे, दूसरा इसके लिए ज्यादा पूंजी की जरूरत नहीं होगी। इसी के सापेक्ष वे स्कूली विषयों के प्रति दृष्टि भी रखते हैं। सभी अभिभावक केवल गणित, अंग्रेजी और विज्ञान की बात करते नजर आए। अपने तर्कों में सभी अभिभावक इन विषयों के उपयोगिता–मूल्य के बारे में बात कर रहे थे। उनका जोर इस बात पर था कि ये वे विषय हैं जिनकी बच्चों को आगे चलकर जरूरत पड़ेगी। 'आगे' का अर्थ उनके अनुसार था– 'बड़ी कक्षा में एडमिशन के लिए', 'नौकरी के लिए परीक्षा देने में', 'जब असल जिंदगी में समस्या आएगी तब' से था। अभिभावकों के इस विचार को मेरे अवलोकन से भी समर्थन मिलता है। मैंने यह पाया कि अधिकांश सहभागी, विद्यालय के अलावा जो समय बचता है उसमें अपने अभिभावकों के कार्यों में मदद करते हैं। यह मदद भले ही उनके लिए प्राथमिक न हो लेकिन यह दिनचर्या का अंग है। इस प्रकार सहभागिता ही अभिभावकों और बच्चों दोनों के लिए 'पार्टटाइम इनकम' का विकल्प तैयार करती है। इस विकल्प में 'हुनर' का होना इसे और विशिष्ट बनाता है।

अभिभावक खुद की भूमिका और विद्यालय की भूमिका के बीच स्पष्ट विभाजन रेखा खींचते हैं। 'नैतिक ज्ञान', 'धार्मिक ज्ञान', 'दुनियादारी का ज्ञान देने में' खुद की भूमिका को देखते हैं। शिक्षक और विद्यालय की भूमिका कामकाज के लिए ज्ञान, व्यवहार के लिए ज्ञान, सफल होने के लिए ज्ञान देने में देखते हैं। अभिभावकों के लिए दो दुनिया हैं– एक वह जिसमें वे अपने बच्चों और परिवार के साथ रह रहे हैं और एक वह जिसमें उनके नियोक्ता या मालिक रह रहे हैं। इस दूसरी दुनिया में वे अपने बच्चों को भेजना चाहते हैं। वे इस दूसरी दुनिया के लोगों के साथ जुड़कर यह मानने लगे हैं कि उनके व्यवहार का तरीका उन्हें विशिष्ट बनाता है। यह विशिष्टता उनके बच्चों में भी पहुंचे इसका रास्ता शिक्षा से होकर जाता है। इसी विशिष्टता के लिए अभिभावक ज्ञान की संज्ञा का प्रयोग करते हैं और वे मानते हैं कि विद्यालय और शिक्षक उस ज्ञान की क्षतिपूर्ति का कार्य कर रहे हैं जो वे अपने बच्चों को नहीं दे पा रहे हैं। वे 'ज्ञान' को गतिशीलता और सशक्तीकरण के माध्यम के रूप में देख रहे हैं। कुछ अभिभावकों से पूछा गया कि क्या वे ऐसी स्थिति की कल्पना कर सकते हैं जब किसी बच्चे को

स्कूल भेजने की जरूरत न हो। इस सवाल के कुछ प्रासंगिक जवाब इस प्रकार के आए–

'हमारे बच्चों को तो स्कूल जाना ही पड़ेगा, नहीं तो वे भी वैसे ही हो जाएंगे जैसे हम हैं।'

'बड़े और रईस लोगों को स्कूल जाने की जरूरत इसलिए होती है कि जिससे उनके बच्चों का टाइम पास हो सके। उनके स्कूल भी ए.सी. वाले होते हैं। वे जब चाहे टीचर से बात कर सकते हैं।'

इन कथनों में हम दो अलग दुनिया देख सकते हैं जो हमारी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था का यथार्थ भी है। लेकिन इस यथार्थ का जो अर्थ अभिभावक ग्रहण कर रहे हैं वह भी महत्त्वपूर्ण है। उस अर्थ में निहित है विद्यालय का संस्थागत वर्गीय चरित्र जो इसके उद्देश्यों को तय कर रहा है। इस वर्गीय चरित्र वाली विद्यालयी प्रक्रिया में उनके लिए आदर्श मॉडल दूसरा वाला ही है लेकिन इससे वे वंचित हैं। फिर भी अभिभावक मानते हैं कि अपनी वर्तमान स्थिति में अपने बच्चों के लिए जो वे कर सकते हैं वो कर रहे हैं। शिक्षक के बारे में अपनी राय साझा करते हुए वे शिक्षक को गुरु मानते हैं और कहते हैं कि शिक्षक ही उनके बच्चों को 'सही रास्ता दिखाएगा', 'भविष्य में क्या करना है वह बताएगा' 'उसके व्यक्तित्व को प्रभावित करेगा'। इसी प्रकार वे शिक्षक को मां–बाप के बराबर भी बताते हैं। शिक्षक के दूरगामी प्रभाव की चर्चा करते हुए भी वे अपने अनुभवों से ही संदर्भ लेते हैं। बताते हैं कि किस प्रकार उनके अध्यापकों ने उनके जीवन को प्रभावित किया। इसके अलावा वे गुरु को अपने बच्चों के लिए रोल मॉडल भी मानते हैं। वे बच्चों को अपने स्कूली अनुभवों के सकारात्मक और नकारात्मक दोनों पक्षों के बारे में बताते हैं। अध्यापकों में भी वे कक्षाध्यापक के विशेष प्रभाव के बारे में चर्चा करते हैं। कक्षाध्यापक उनके अनुसार 'स्कूल में बच्चों का रखवाला है'। बच्चों की पूरी निगरानी, पढ़ाई का दायित्व वे कक्षाध्यापक का मानते हैं। कक्षाध्यापक उनके लिए मध्यस्थ भी है। वह एक ओर विद्यालय प्रशासन और अभिभावकों के बीच संवाद का माध्यम है तो दूसरी ओर बच्चे और अभिभावकों के बीच संवाद करवाता है।

अभिभावकों और विद्यालय के पारस्परिक संबंध

अभिभावकों और विद्यालय के पारस्परिक संबंध का संस्थागत स्वरूप पैरेंट–टीचर मीटिंग में देख सकते हैं। संदर्भित विद्यालयों में प्रत्येक महीने के दूसरे शनिवार को पैरेंट–टीचर मीटिंग का प्रावधान है। इसके अतिरिक्त दोनों ही विद्यालयों के प्रशासन से मालूम हुआ कि विद्यालय के उत्सवों पर भी अभिभावकों को आमंत्रित किया जाता है। विद्यालय प्रशासन जोर देकर यह भी बताता है कि 'अभिभावक जरूरत पड़ने पर कक्षाध्यापक या प्रधानाचार्य से भी मिल सकते हैं।' 'जरूरत' की व्याख्या विद्यालय प्रशासन और शिक्षकों के ही शब्दों में देखें– 'जब पैरेंट्स को अपने बच्चों के बारे में जानना हो या उनके बारे में हमें कुछ बताना हो। जब बच्चे के परफॉरमेंस से संतुष्ट न हों, जब शिक्षकों के बारे में कोई बात करनी हो।'

उक्त बातों में एक भी ऐसा पक्ष नहीं दिख रहा जहां अभिभावक की सक्रिय भूमिका हो। प्रत्येक भूमिका में आप देख सकते हैं कि अभिभावक शिकायती मुद्रा में है या अपनी असंतुष्टि व्यक्त कर रहा है। इससे यह भी पता चलता है कि अभिभावक की एक शिक्षणशास्त्रीय अभिकर्ता के रूप में भूमिका सीमित है। उसे सक्रिय (प्रोएक्टिव) दायित्व न सौंपकर प्रतिक्रियात्मक (रिएक्टिव) दायित्व सौंपा गया है।

अब इस सिक्के का दूसरा पहलू देखते हैं कि अभिभावकों का स्कूल के साथ अपने पारस्परिक संबंधों को लेकर क्या दृष्टिकोण है:

'हमारे स्कूल जाने का फायदा तो है ही, कम से कम बच्चा और मास्टर दोनों सोचेंगे कि कुछ गड़बड़ न करें। बच्चे को डर रहेगा कि मम्मी को असलियत का पता चल जाएगा।'

'अरे कोई फायदा नहीं हमारे स्कूल जाने का। समय बर्बाद करना है। वे वैसे ही पढ़ाएंगे जैसे पढ़ा रहे हैं, बस सब ऐसे ही हैं।'

'हम जाते तो भी क्या करते, वे (शिक्षक और प्रशासन) कौन–सी हमारी बात सुनते। हां–हां कह कर भेज देते हैं।'

विद्यालय का यह दावा कि वह 'पैरेंट्स को स्पेस प्रदान करता है और अभिभावकों का पक्ष कि विद्यालय के संस्थागत दायरे में उनकी आवाज के लिए कोई स्थान नहीं है; विद्यालय और अभिभावकों के बीच के अंतराल को दर्शाता है। यह अंतराल विद्यालय के शेष सामाजिक परिवेश से अलग होने का भी संकेत देता है। एक सूक्ष्म समाज के रूप में विद्यालय की संस्कृति, उस संस्कृति से अलग है जिससे विद्यार्थी आते हैं।

अभिभावकों की स्वयं की दिनचर्या इतनी जटिल है कि वे स्कूल की समय सारिणी के अनुसार बैठक के लिए बुलाए जाने पर पहुंच नहीं पाते हैं। इसका विकल्प उन्होंने प्रतिनिधि को भेजने के रूप में चुना है। प्रायः उनका प्रतिनिधि उनका कोई पड़ोसी होता है। इस प्रतिनिधि को चुनते समय वे ध्यान रखते हैं कि वह 'पढ़ा–लिखा' और समझदार हो, स्कूल में उसकी जान–पहचान हो। यहां पर एक नई बात पता चली कि 'जान–पहचान' के दायरे में स्कूल में काम करने वाले चौकीदार, सफाईकर्मी और अन्य कार्यालय सहायक स्टाफ आते हैं। इसका मैंने खुद अवलोकन भी किया कि अभिभावक जब भी स्कूल आते तो वे चौकीदार, सफाईकर्मी और अन्य कार्यालय सहायक स्टाफ से पहले बातचीत करते हैं, उसके बाद शिक्षक से मिलते हैं। इसकी एक संभव व्याख्या यह हो सकती है कि इन कर्मचारियों को अभिभावक अपने जैसा ही समझते हैं जबकि शिक्षक उनके लिए एक 'अन्य' होता है जो शिक्षित होने के कारण श्रेष्ठ है।

अभिभावकों और बच्चों की अंतःक्रिया

वैसे तो घर के माहौल में अभिभावकों और बच्चों की सतत अंतःक्रिया होती रहती है लेकिन इस कार्य में यह जानने की कोशिश की गई कि स्कूल की गतिविधियों के संदर्भ में अभिभावकों की बच्चों से अंतःक्रिया का स्वरूप क्या है? अभिभावकों ने ही बातचीत के दौरान स्पष्ट लकीर खींचते हुए बताया कि 'वैसे तो बच्चे स्कूल के बाद घर में रहते हैं लेकिन पढ़ाई–लिखाई तो स्कूल में करते हैं। घर पर स्कूल में पढ़े काम का अभ्यास करते हैं'; 'दिए गए काम पूरे करते हैं और याद करते हैं'। इन कार्यों में खुद की भूमिका के बारे में वे कहते हैं कि 'हमसे जितना बन पड़ता है उतना दे देते हैं'; 'यही सोचते हैं कि इन्हें कलम कॉपी कुछ कम न पड़े'; 'ट्यूशन भी लगवा दिया है'।

इसी क्रम में एक अभिभावक यह भी बताते हैं कि

'मैं नियम से रोज रात को एक घंटे बच्चों के साथ बैठता हूं। कोशिश रहती है कि उस दौरान वे स्कूल का काम पूरा कर लें। उनको डराता हूं और इनाम भी देता हूं। बस यही चाहता हूं, वे कैसे भी पढ़ लें।'

स्पष्ट है कि अभिभावक यह ध्यान रखते हैं कि बच्चे स्कूल से आने के बाद घर पर कुछ ऐसा अवश्य करें जो विद्यालयी अनुभव की निरंतरता में हो। इस कार्य को पूरा करने में वे अपनी सीमाएं स्वीकारते हैं जैसे–व्यवसाय की प्रकृति, जिसके कारण वे बच्चों को कम समय दे पाते हैं, और उनके खुद के 'स्कूली ज्ञान' का कम होना, विशेष रूप से गणित और अंग्रेजी का ज्ञान। इसी क्रम में पता चला कि होमवर्क ही अभिभावकों और बच्चों के बीच

अंतःक्रिया का माध्यम है। सभी अभिभावकों ने बताया कि वे ये मानते हैं कि बच्चों की सीखने की प्रक्रिया ठीक ढंग से चले इसके लिए बच्चों को स्कूल से जो होमवर्क मिलता है, उसे नियमित रूप से पूरा करना चाहिए। यह स्वीकारोक्ति अप्रत्याशित नहीं थी। लेकिन यह स्थिति विशेष थी जबकि अभिभावकों ने कहा कि–

'हम भी चाहते हैं कि बच्चों के साथ बैठें, उनसे बातें करें लेकिन हम उनकी मदद नहीं कर पाते, हमने पढ़ाई–लिखाई नहीं की इसलिए किस विषय पर बात करें।'

'मैं होमवर्क में मदद नहीं कर पाती। वैसे भी मैं कम पढ़ी–लिखी हूं और ज्यादातर होमवर्क इंग्लिश में करना होता है।'

इस स्थिति का विकल्प वे ट्यूटर में देखते हैं जिसे वे धन देकर उसके बदले में उससे अपने बच्चे के सीखने की प्रक्रिया को सुगम करने का दायित्व चाहते हैं। अभिभावकों के उक्त कथनों का अर्थ यह नहीं है कि वे कुछ भी नहीं करने की स्थिति में हैं बल्कि वे कई बार बच्चों के गृहकार्य को पूरा करवाने में खुद भी आनंद का अनुभव करते हैं–

'बच्चे जब प्रोजेक्ट करते हैं तो उनकी मदद करने में मजा आता है। मैं उनके साथ पोस्टर बनवाता हूं। खिलौने भी बनवाता हूं।'

यह दर्शाता है कि ट्यूटर अभिभावक की पूरक भूमिका निभाते हैं। ट्यूटर की भूमिका में अधिकांशतः आस–पड़ोस के कॉलेज जाने वाले विद्यार्थी थे। इन ट्यूटरों को सहभागी अभिभावक पढ़ने में अच्छा मानते हैं और इस कारण उन्हें अपने बच्चों के मार्गदर्शन के लिए चुनते हैं। ट्यूटर भी अभिभावक की भूमिका में नजर आए। उनकी इस भूमिका को समझने के लिए एक अभिभावक के ये शब्द पर्याप्त हैं: 'हम न तो बच्चों को समय दे पाते हैं, न ही इतना जानते हैं कि उनकी मदद कर सकें, इसलिए ट्यूशन भेजना जरूरी हो जाता है।' इसी प्रकार 'ट्यूशन जाने से इतना तो है कि बच्चे अपना काम तो पूरा कर लेंगे।' इस प्रकार से ट्यूटर अभिभावक की उस भूमिका में है जहां वह प्रतिदिन की विद्यालयी गतिविधि पर बच्चे से बात करता है। लेकिन यह भी ध्यान रखना आवश्यक है कि इस बातचीत के केंद्र में गृहकार्य होता है। ट्यूशन के दौरान बच्चा अपने हम उम्र साथियों के एक अन्य समूह से भी मिलता है जो उसके आस–पड़ोस में रहते हैं। अभिभावकों ने यह भी बताया कि वे विद्यालय–चुनाव, विषय–चुनाव, भविष्य में क्या करना है या क्या नहीं करना है इन सब निर्णयों में ट्यूटर की मदद लेते हैं।

एक अन्य पक्ष जिस पर अभिभावक जोर देते हैं वह है अधिक गृहकार्य मिलना। वे बताते हैं कि स्कूल में लंबी छुट्टियां पड़ने पर जब ज्यादा गृहकार्य मिल जाता है तो वह इनके लिए समस्या बन जाता है। इसका कारण यह है कि छुट्टी इन अभिभावकों के लिए ऐसा अवसर है जब वे अतिरिक्त धन कमाने का उद्यम करते हैं और ऐसे मौकों पर वे अपने बच्चों से इन कार्यों में मदद चाहते हैं। कई बार पूछने पर बच्चे कह देते हैं कि गृहकार्य नहीं मिला। तब वे समझ नहीं पाते कि अब क्या किया जाए? ऐसी स्थिति में आस–पड़ोस के दूसरे बच्चों से पूछते हैं या स्कूल डायरी देखते हैं।

अभिभावकों ने यह भी बताया कि वे जब अपने बच्चों के साथ स्कूल आधारित कार्यों पर चर्चा कर रहे होते हैं तो अपनी भावनाओं को भी साझा करते हैं। वे बच्चों के साथ अपनी अपेक्षाएं जताते हैं। वे बच्चों को बताते है कि जब वे स्कूल में थे तो कौन–सी चुनौतियां थीं? क्या पारिवारिक समस्याएं थीं? कई बार अभिभावक अपने वर्तमान कार्यस्थल की चुनौतियों को भी बच्चों के साथ साझा करते हैं। अभिभावकों का मानना है कि इन बातों से वे बच्चों को अभिप्रेरित करते हैं साथ ही उन्हें इस दायित्वबोध का भी एहसास कराते हैं कि उन्हें मन लगाकर पढ़ना चाहिए। बच्चों की मदद किस प्रकार करें? इसमें अभिभावकों के ये अवलोकन भी महत्त्वपूर्ण हैं–

'जब मैं काम करने जाती हूं तो इस बीच मैं देखती हूं कि दीदी बच्चों से क्या पूछ रही हैं? कैसे काम देख रही हैं? मैं भी ऐसा करने की कोशिश करती हूं। मैंने देखा है कि वे घंटों अपने बच्चों को पढ़ाती हैं।'

इस प्रकार के अवलोकनों के निहितार्थ की महत्ता को तालिका से समझा जा सकता है जो इन अभिभावकों की व्यावसायिक स्थिति को दर्शाती है। हम देख सकते हैं कि अभिभावक जिस प्रकार के कार्यों में लगे हुए हैं उनमें नियोक्ता की भूमिका और उनसे अंतःक्रिया महत्त्वपूर्ण है। नियोक्ता अपनी इस भूमिका में अभिभावकों के विद्यालय के प्रति आग्रहों और अपेक्षाओं को तय करते हैं। अभिभावक अपने बच्चों के लिए रोल मॉडल अपने 'अधिकारी', 'बॉस' और बड़े घर के ग्राहकों में खोजते हैं। अभिभावकों के लिए ये लोग ऐसे उदाहरण हैं जिनके जैसा वे अपने बच्चों को बनाना चाहते हैं। बच्चों ने भी बताया कि घर में बातचीत के दौरान माता–पिता 'साहब', 'मालिक', 'आंटी' के बारे में बताते हैं। ये बातें उन व्यक्तियों की उपलब्धियों, छवियों और सुविधाओं के इर्दगिर्द होती हैं। यह अवलोकन महत्त्वपूर्ण है कि अभिभावक अपने नियोक्ताओं के बच्चों के बारे में न के बराबर चर्चा करते हैं। साक्षात्कार में अभिभावकों ने यह भी बताया कि उनके नियोक्ता सलाहकार की भूमिका भी निभाते हैं। वे बताते हैं कि कहां प्रवेश कराया जाए? भविष्य में क्या पढ़ाया जाए? कई बार वे प्रवेश दिलाने, शैक्षिक संसाधन उपलब्ध कराने में मदद भी करते हैं।

अब तक की विवेचना बताती है कि अभिभावक एक शिक्षणशास्त्रीय अभिकर्ता है। वे इस भूमिका में सक्रियता के साथ संलग्न भी हैं। उनकी भूमिका को तय करने में, उनकी खुद की सामाजिक–आर्थिक स्थिति, विद्यालयी अनुभव, नियोक्ता के साथ संपर्क, ट्यूटर का सुझाव और सहयोग और उनके प्रति विद्यालय का संस्थागत दृष्टिकोण महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। यह कार्य इस पक्ष में भी प्रमाण देता है कि परिवार में होने वाली अंतःक्रिया सीखने का स्रोत है न कि सीखने की प्रक्रिया में बाधा। इसी के समांतर कुछ सवालों को भी खड़ा करता है कि किस प्रकार से इस संसाधन का उपयोग सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में किया जाए? किस प्रकार से अभिभावकों की दृष्टि से उनकी शैक्षिक अपेक्षाओं को समझा जाए? विद्यालय की प्रक्रियाओं में उनकी भागीदारी सुनिश्चित करने और उन्हें भी शिक्षणशास्त्रीय अभिकर्ता के रूप में स्थान देने की प्रक्रिया में अभिभावक–विद्यालय अंतराल को कैसे पाटा जाए? इन सवालों के उत्तर शिक्षणशास्त्रीय अभ्यास के दायरे को विद्यार्थियों के परिवेश से जोड़ने में हमारी मदद करेंगे और हमारे लिए एक ऐसा माध्यम तैयार करेंगे जिससे विद्यार्थियों के दैनिक अनुभवों और विमर्शों को कक्षकक्षीय प्रक्रियाओं का अंग बनाया जा सकेगा।

ऋषभ कुमार मिश्र : सहायक प्राध्यापक, शिक्षा विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।